नवजागरण एवं दलित अस्मिता का प्रश्न

डॉ भावना

असिस्टेंट प्रोफेसर

(हिन्दी विभाग)

हुकुम सिंह बोर राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय सोमेश्वर (अल्मोड़ा)

उत्तराखंड

ईमेल- upadhyaybhawna2018@gmail.com

सारांश

हिंदी साहित्य में दलित साहित्य लेखन की शुरुआत अधिक पुरानी नहीं है। 19वीं शताब्दी में जब आधुनिक साहित्य का विकास हुआ तब आधुनिकता या नवजागरण से अनुप्लावित होकर साहित्य की लगभग सभी विधाएं विकसित हुई। दलित साहित्य भी इसी तरह का साहित्य है। सामान्यत: यह माना जाता है कि हिंदी में दलित साहित्य के लेखन की शुरुआत का दौर 80 के दशक से हुआ। यह वह समय था जब हमारे देश का सामाजिक परिदृश्य तेजी से परिवर्तित हो रहा था। इसी परिवर्तित होते समय में हिंदी साहित्य ने भी अपनी करवट बदली, जिससे एक ऐसे साहित्य का जन्म हुआ जो शोषण, अन्याय व भेदभाव के विरुद्ध अपनी आवाज को बुलंद करता हुआ इंसान को इंसान समझने का दम रखता है।

मुख्य शब्द- नवजागरण, दलित, अस्मिता, साहित्य, समाज, सामानता इत्यादि।

"स्वीकार्य नहीं है मुझे जाना,

मृत्यु के बाद / तुम्हारे स्वर्ग में,

वहां भी तुम/ पहचानोगे मुझे मेरी जाति से ही।"1

यूरोपीय इतिहास के 14वीं- 15वीं शताब्दी का वह समय जिसमें कला, साहित्य व विज्ञान के नए अनुसंधान तथा विकास से वहां के नागरिकों में एक वैज्ञानिक चेतना का विकास हुआ, उसे नवजागरण या रेनेसां की संज्ञा दी गई।

नवजागरण के फलस्वरुप इटली व यूरोपीय देशों में एक वैज्ञानिक आंदोलन की शुरुआत हुई, जिसके केंद्र में समाज सुधार, बुद्धिवाद, समानता, स्वतंत्रता तथा भाईचारे की भावना निहित थी। भारतीय संदर्भ में जिसे नवजागरण की संज्ञा दी गई उसका समय 19वीं सदी से माना जाता

है। तत्कालीन भद्र वर्ग ने पाश्चात्य शिक्षा व चिंतन से प्रभावित होकर भारतीय समाज तथा धर्म में व्याप्त रूढ़ियों व कुप्रथाओं पर प्रश्न चिन्ह लगना शुरू कर दिया। वास्तविक रूप में भारतीय नवजागरण दो भिन्न संस्कृतियों के परिणाम स्वरुप उत्पन्न हुआ है। नवजागरण के विषय में डॉक्टर रामविलास शर्मा का कहना है कि_

"समाज जब एक व्यवस्था से दूसरी व्यवस्था में पहुंचता है, उस संक्रमण को हम नवजागरण की संज्ञा दे सकते हैं।"2

अगर हम भारतीय नवजागरण पर दृष्टि डालें तो हम पाते हैं कि यहां केवल पुरानी व्यवस्थाओं पर नए-नए विचारों का आलोपन ही किया गया है। यहां समाज व धर्म की जो मूलभूत धारणा है, उसमें कोई परिवर्तन नहीं आ पाया है। किसी भी देश के समग्र विकास के लिए यह आवश्यक है कि उस देश के प्रत्येक नागरिक की दशा व स्थिति में एक सकारात्मक परिवर्तन आए तथा साथ ही साथ वह उस देश के विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान दे सके। अब प्रश्न यह उठता है कि जो नवजागरण के अग्रदूत रहे हैं क्या उनके चिंतन एवं विचारों से देश की समग्र आशाएं पूर्ण होती हुई दिखाई देती हैं? क्या उनके विचारों से समाज के उपेक्षित वर्ग जैसे स्त्री, दलित, किसान इत्यादि के जीवन दशाओं में कोई अपेक्षित परिवर्तन होता हुआ दिखाई दिया? ऐसे ज्वलंत प्रश्नों के आलोक में ही नवजागरण व दलित चेतना का मूल्यांकन किया जाना अपेक्षित है। नवजागरण के जो प्रमुख पुरोधा रहे उनमें राजा राममोहन राय, दयानंद सरस्वती, मदन मोहन मालवीय, ईश्वर चंद्र विद्यासागर, थियोसोफिकल सोसायटी, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद, ज्योतिबा फुले, सावित्रीबाई फुले, रामास्वामी नायकर, अछूतानंद इत्यादि नाम गण्य हैं। इन प्रमुख पुरोधाओं के द्वारा जाति प्रथा का विरोध, विधवा पुनर्विवाह, बाल विवाह, अस्पृश्यता, स्त्री शिक्षा, जैसे ज्वलंत प्रश्नों को उठाकर समाज में फैली हुई कुरीतियां के प्रति भारतीय जनमानस को जागरूक करने का प्रयास किया गया लेकिन उस दौर में जितने भी सुधार आंदोलन प्रकाश में आए उन सबके पीछे दलित व स्त्रियों के जीवन में परिवर्तन लाने से कई अधिक चिंता राजनीतिक हित व राष्ट्र के पहचान की थी। प्राय: उस समय जो आंदोलन चलाये गए वे उदात्त लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रयासरत थे लेकिन जब तक विचारों के धरातल पर अमल नहीं किया जाता तब तक किसी भी लक्ष्य की प्राप्ति होना संभव नहीं है। यदि हम नवजागरण काल में दलितों के दयनीय जीवन से मुक्ति के सवाल की बात करें तो उस काल में ज्योतिबा फुले, पेरियार, रामास्वामी नायकर, सावित्रीबाई फुले, डॉक्टर भीमराव अंबेडकर

आदि के विचारों से उनकी मुक्ति के लिए आवाज उठाई गई और वही आवाज कालांतर में विविध आंदोलनों के रूप में समाज के समक्ष आई। समकालीन साहित्य चिंतन में अस्मिता का मुद्दा केंद्र बिंदु बना हुआ है। यही कारण है कि इतिहास में दबाई गई, कुचली गई जो पीड़ित, वंचित व अपेक्षित जनों की आवाज़ हैं वह आज पुनः अपना अस्तित्व तलाशती हुई नजर आ रही है। इन उपेक्षित जनों की आवाज को समाज में एक अपेक्षित हासिया छोड़कर ही सही पर स्वीकार जरूर किया जाने लगा है। विविध अस्मितामूलक विमर्शों की भांति दलित विमर्श ने भी साहित्य के मनीषियों का ध्यान अपनी ओर खींचा है।

हमारे देश में जातिगत समस्या समाज की बुनियादी समस्याओं में से एक है। दलितों की अस्मिता व उनके स्वाभिमान को प्राचीन काल से लेकर आज तक साहित्य में कोई महत्व नहीं दिया गया। यदि संस्कृत साहित्य की बात की जाए तो वहां दलित पात्रों की भाषा भी संस्कृत नहीं रही है। अर्थात समाज के साथ-साथ साहित्य में भी दलितों का शोषण होता रहा है। यद्यपि भारतीय भाषाओं में दलित साहित्य का प्रवाह देखने को मिलता है किंतु इस साहित्य के लिए दलित शब्द को लेकर विद्वानों में अनेक मतभेद मिलते हैं। दलित शब्दों को लेकर प्रारंभ में बड़ा विरोध हुआ क्योंकि यह शब्द अपमान सूचक माना गया है। वास्तव में दलित किसे कहा जाए? उसकी पहचान क्या है? उसे किस जाति या वर्ण का परिचायक माना जाए? क्या निम्न रूप से जीवन बसर करने वाले को इस श्रेणी में रखा जाएगा? न जाने कितने ही ऐसे प्रश्न दलित शब्द के प्रयोग के कारण चर्चा का विषय बनकर केंद्र में रहे हैं। दलित कवि ओम प्रकाश वाल्मीकि दलित शब्द को परिभाषित करते हुए लिखते हैं कि_

"दलित शब्द भाषावाद, जातिवाद और क्षेत्रवाद को नकारता है और पूरे देश को एक सूत्र में पिरोने का कार्य करता है।"3

वस्तुतः विद्वानों के द्वारा दलित शब्द को अनेक प्रकारों से परिभाषित किया गया। इन विविध प्रकारों से यह ध्वनित होता है की साहित्यिक जगत में दलित शब्द के प्रयोग में दो मत प्रचलित हैं। एकमत वह है जो उन तमाम लोगों को दलित की श्रेणी में रखता है जो कि किसी भी प्रकार के शोषण का शिकार हुए हैं फिर चाहे वे किसी भी वर्ग में क्यों ना आते हो। दूसरा वर्ग वह है जो सिर्फ उन्हें ही दलित मानता है जो की शूद्र तथा अतिशूद्र की श्रेणी में आते हैं। इनका यह मानना है कि जो हमारी सामाजिक व्यवस्था है उसके चलते समाज में उच्च वर्गीय व्यक्ति सम्मान का पात्र है, जबकि निम्न वर्गीय व्यक्ति उपेक्षा का शिकार है। दलित शब्द को लेकर जिस प्रकार

विद्वानों ने दो तरह की व्याख्या की इसी तरह से दलित साहित्य को लेकर भी दलित और गैर दलित बुद्धिजीवियों में काफी मतभेद है। एक वर्ग का यह मानना है कि जो दलित है वही वास्तविक रूप में दलित साहित्य का सृजन कर सकता है। जबकि दूसरे वर्ग का मानना है कि दलित साहित्य के सृजन के लिए यह बिल्कुल भी आवश्यक नहीं कि वह व्यक्ति जन्म से ही दलित हो। वास्तव में दलित साहित्य का स्वरूप सामाजिक अन्याय के विरुद्ध है। यदि दलित साहित्य के उद्देश्य के विषय में चर्चा करें तो मोहनदास नैमिशराय ने दलित साहित्य के उद्देश्य के विषय में लिखा है कि– **"शोषित वर्ग के खिलाफ अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करते हुए समाज में समता, बंधुता तथा मैत्री की स्थापना करना ही दलित साहित्य का उद्देश्य है।"4**

वस्तुतः दलित वर्ग में जागृति पैदा करके उनके स्वाभिमान को जगाना तथा उनके ऊपर होने वाले अन्याय के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए प्रेरित करना दलित साहित्य का केंद्रीय भाव है। दलित साहित्य में यह माना जाता है कि जो हमारे देश की सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक विषमता है तथा साथ ही धर्म, ईश्वर, अंधश्रद्धा व दलितों पर परंपरा से हो रहे अत्याचार आदि तत्व मनुष्य एवं मनुष्यता के शत्रु हैं। इनसे मुक्ति प्राप्त करने के लिए किए गए संघर्ष का नाम ही दलित साहित्य है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि के अनुसार– **"दलित साहित्य जन साहित्य है। यानी मास लिटरेचर। सिर्फ इतना ही नहीं लिटरेचर ऑफ एक्शन भी है, जो मानवीय मूल्यों की भूमिका पर सामंती मानसिकता के विरुद्ध आक्रोशजनित संघर्ष है। इसी संघर्ष और विद्रोह से उपजा है दलित साहित्य।"5**

इस प्रकार ओमप्रकाश वाल्मीकि की दृष्टि में दलित साहित्य संघर्ष, आक्रोश व विद्रोह का नाम है।

मोहनदास नैमिशराय ने दलित साहित्य के संबंध में लिखा है कि–

"कुछ लोगों ने लिखा है और कहा है कि दलित साहित्य वेदना का, पीड़ा का साहित्य है। कुछ ने कहा यह मुक्ति का साहित्य है। इस संबंध में अगर हम ऐतिहासिक घटनाओं, दुर्घटनाओं का अध्ययन करें तो ऐसा मानना चाहिए कि दलित साहित्य पीड़ा, वेदना अथवा मुक्ति का ही साहित्य नहीं बल्कि वह अपने अधिकारों, अस्मिता और पहचान के लिए संघर्ष करने वालों का साहित्य है।"6

दलित साहित्य लेखन दलित अस्मिता के प्रश्न की तलाश है। जिस मानव समूह को वक्त के साथ हाशिए पर धकेल दिया गया था, वह आज अपनी अस्मिता की पुनरप्राप्ति व उत्थान के लिए ठीक उसी तरह से संघर्षरत है, जिस तरह से आज प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन को बेहतर बनाने में लगा हुआ है। मानव जीवन की यथार्थ, संघर्षपूर्ण स्थितियों, सामाजिक विषमताओं व अंतरविरोधों का चित्रण दलित साहित्यकारों के द्वारा अपने जीवन के प्रामाणिक अनुभवों की अभिव्यक्ति के माध्यम से किया गया है। इन्होंने उस सामाजिक व्यवस्था के जुल्म व शोषण पर अपनी असहमति प्रकट करते हुए उसका पुरजोर ढंग से विरोध किया जो दलितों के लिए अमानवीय साबित हो रही थी। इससे समाज के संवेदनशील व्यक्तियों में एक बेचैनी पैदा हुई तथा समाज के बहुत सारे मिथक व भ्रम भी टूटे। दलित साहित्यकारों ने अनेक मान्यताओं में छिपी हुई मान्यता को उद्घाटित कर उन पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया जिन्हें, अब तक पवित्र मानकर मानव व्यवहार में लाया जाता था।

वर्तमान में दलित अस्मिता का प्रश्न जिस नवजागरण व सामाजिक परिवर्तन के दौर से गुजर रहा है, वह हमारे देश के क्रांतिकारी अध्यायों में से एक है। आज दलित साहित्य हिंदी साहित्य की मुख्य धारा की बहसों व उत्तर आधुनिक संस्कृति के गहरे सरोकारों का विषय बना हुआ है। दलित समाज में डॉक्टर अंबेडकर के द्वारा दिए गए मंत्र **'शिक्षित हो', 'संघर्ष करो', 'संगठित हो'**, के सिद्धांत ने आत्मचेतना का संचार किया है, जिसके फलस्वरुप पहचान बनाने की प्रक्रिया प्रगति की ओर अग्रसर हुई है। दलित साहित्यकारों के द्वारा इसी पहचान और अस्मिता की तलाश में अपने अतीत, वर्तमान व भविष्य के बारे में अपने विचारों को शब्दबद्ध किया गया है। यद्यपि महात्मा ज्योतिबा फुले को आधुनिक भारत में दलित आंदोलन के सूत्रपात के रूप में याद किया जाता है लेकिन देशव्यापी प्रभाव के कारण अंबेडकर दर्शन को दलित साहित्य व दलित विमर्श के चिंतन की भाव भूमि का प्रस्थान बिंदु माना जा सकता है। डॉक्टर अंबेडकर की विचारधारा व प्रेरणा ने दलित साहित्य की पृष्ठभूमि तैयार करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यदि हिंदी साहित्य में दलित आंदोलन की वैचारिक अभिव्यक्ति की बात की जाए तो इसका पहला प्रमाणिक व उपलब्ध साहित्य हमें भोजपुरी भाषा में लिखित तथा सितंबर 1914 में सरस्वती पत्रिका में प्रकाशित कवि हीराडोम की 'अछूत की शिकायत' कविता है। यह कविता अपने संपूर्ण इतिहासबोध के साथ अछूतों की सदियों के संताप की आत्मकथा से समाज को बदलने की ऊर्जा भरती है। इस कविता के माध्यम से कवि ने जो संतुष्टि व्यक्त की है

वह संतुष्टि सिर्फ कवि की ही नहीं बल्कि पूरे दलित समाज की है, जो आगे चलकर एक आंदोलन के रूप में प्रकट होती हुई साहित्यिक अभिव्यक्ति का रूप धारण कर लेती है। इस कविता की चंद पंक्तियां दृष्टव्य हैं, जिनमें दलितों की त्रासदी को अभिव्यक्ति प्रदान की गई है_

“हमनी के राति दिन दुखवा भोगत बानी

हमनी के सहेबे से मिनती सुनाइबि

हमनी के दुख भगवनऔ देखत जे

हमनी के कबुले कलेसवा उठाइबि।”7

हीराडोम के बाद इस समय में एक दूसरे दलित कवि 'अछूतानंद हरिहर' का नाम भी प्रमुख रूप से लिया जाता है। इन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से न केवल दलितों के दुख : दर्द को धार्मिक अभिव्यक्ति प्रदान की, बल्कि दलित चेतना के निर्माण में एक महत्वपूर्ण भूमिका भी निभाई है। इन्होंने अपनी काव्य कृतियों में लोकछंदों के माध्यम से इतिहास बोध व गंभीर चिंतन को अभिव्यक्त करते हुए लिखा है कि _

“ मैं अछूत हूं, छूत न मुझमें फिर क्यों जन ठुकराता है,

छूने में भी पाप मानता छाया से घबराता है

मुझे देख नाके सिकोड़ता दूर हटा वह जाता है

हरिजन भी कहता है मुझको हरी से विलग कराता है

फिर जब धर्म बदल जाता है मुसलमान बन जाता हूं,

अथवा ईसाई बनकर हैट लगाकर आता हूं

छूआछूत सब मिट जाती है साहब मैं कहलाता हूं,

उन्हीं मंदिरों में जाकर मैं उन्हें पवित्र बनाता हूं।”8

कवि अछूतानंद ने अपनी काव्य कृतियों के माध्यम से अपनी दयनीय स्थिति को अभिव्यक्ति प्रदान करने के साथ ही साथ अपनी इस स्थिति को बदलने की इच्छा और संकल्प को भी वाणी प्रदान करते हुए लिखा है कि _

“सोते तुम्हें मुद्दत हुई

तज नींद अब तो जागिए

हजम होत वंश अपने को

तो जल्द बचाइए।”9

इन दोनों ही कवियों की काव्य कृतियों को दलित चेतना की साहित्यिक अभिव्यक्ति का प्रस्थान बिंदु कहा जा सकता है। उनकी रचनाओं में गहन इतिहास बोध के साथ-साथ दलित साहित्य के सभी गुण दृष्टिगोचर होते हैं। ऐसे ही कई ऐसे कवि, कथाकार व आलोचकों के नाम अति महत्वपूर्ण हैं, जिनके सहयोग व संघर्ष से दलित साहित्य में सामाजिक संघर्ष व पहचान की प्रक्रिया तेज हुई है तथा एक साहित्यिक आंदोलन का रूप लेकर दिन-ब-दिन विकसित हो रही है। इनमें मोहन दास नैमिशराय, ओमप्रकाश वाल्मीकि, जयप्रकाश कर्दम, शिवराज सिंह 'बेचैन' तुलसाराम, माता प्रसाद, सूरजपाल चौहान, सुशीला ठाकुर, कौशल्या बैसंत्री, कंवल भारती, मंसाराम विद्रोही, विमल थोराट, सूरज बडत्या, भगवान दास, रजत रानी मीनू, नामदेव, कुसुम वियोगी इत्यादि कवि, कथाकार, आलोचकों के नाम प्रमुख हैं। तमाम तरह के मतभेदों के बावजूद दलित व दलित साहित्य ने आज साहित्य व समाज में अपनी जो पहचान बनाई है, उस समाज व साहित्य में जिन लोगों का एक आधिपत्य चला आ रहा था उनसे भी उसने स्वयं को स्वीकृति दिलाई है। आज के समय में अब दलित कौन है? या दलित लेखक किसे माना जाए? जैसे मुद्दे बहस के विषय नहीं रह गए हैं। दलितों को जिन गंभीर समस्याओं का सामना करना पड़ता है उनमें पहली व प्रमुख समस्या है इंसानों का दर्जा पाने की तथा दूसरी प्रमुख समस्या है जो उनके साथ भेदभावपूर्ण व्यवहार होता है। वैश्वीकरण के दौर में भी दलितों के प्रति भेदभावपूर्ण व्यवहार बरकरार है। यह भारतीय समाज के लिए एक बहुत बड़ा अभिशाप है और यही कारण है कि वर्तमान में दलित विमर्श के अध्ययन की प्रासंगिकता बड़ी है। आज जातिवाद व छुआछूत के कारण ही हमारा देश कमजोर हो रहा है। ऐसे में जातीविहिन समाज बनाना व जातिवाद से ऊपर उठकर एक सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाना सच्चे राष्ट्र के निर्माण के लिए परम आवश्यक है। ऐसे में सवालों को भी अपनी संकीर्णता से बाहर निकाल कर एक व्यापक दृष्टिकोण अपनाकर इंसान को इंसान की नजर से देखना होगा। आज दलित साहित्य के माध्यम से जहां साहित्यकार अपनी रचनाओं में भाईचारा सामानता, नस्ल, रंग इत्यादि के आधार पर जहां सभी प्रकार के विभेदों को नकार रहे हैं, वहीं वे धर्म, दर्शन, जन्म, धन, सत्ता इत्यादि के आधार पर भी किसी भी श्रेष्ठता व निकृष्टता को पूर्णत: खारिज कर रहे हैं। ऐसे में न केवल दलित बल्कि पूरे समाज के लिए इन विभेदों को मिटाना आवश्यक है।

संदर्भ

1 डॉ चैन सिंह मीना, हिंदी दलित कविता: रचना प्रक्रिया; पृष्ठ _ 226

2. डॉ पायल लिल्हारे, हिंदी साहित्य और दलित चेतना नव मूल्यांकन; पृष्ठ_ 21

3. वही; पृष्ठ_ 38

4. सवाल, नया पथ अंक _ 24_25 जुलाई सितंबर_ 1997 पृष्ठ_ 104_105

5. ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौंदर्य शास्त्र; पृष्ठ _15

6. मोहन दास नैमिशराय, मराठी और हिंदी दलित आत्मकथाएं; पृष्ठ _19

7. डॉ पायल लिल्हारे, हिंदी साहित्य और दलित चेतना नव मूल्यांकन; पृष्ठ_ 27

8. वही; पृष्ठ _28

9. वही; वही; पृष्ठ_ 28